श्री मते रामानुजाय नमः

अ० भा० श्रीवैष्णव सम्मेलन स्वर्ण जयन्ती महोत्सव

के

अध्यक्ष

श्री गोवर्धन पीठाधीश्वर कोयल कन्दाड़ै

श्री १००८ श्री गोवर्धन रङ्गाचार्य जी महाराज

श्री रङ्ग मन्दिर बृन्दाबन

का

भाषण

प्रकाशक :—

स्वागत समिति, बसाँव (आरा)

फाल्गुन सं० २०१७

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

तस्मै रामानुजार्याय नमः परम योगिने ।
यः श्रुतिस्मृति सूत्राणामन्तर्ज्वरमशीशमत् ॥

प्रिय श्रीवैष्णव महानुभाव !

अखिल भारतवर्षीय श्रीवैष्णव सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर आसीन करके आपने मुझे जो गौरव प्रदान किया है वह वस्तुतः श्रीगोवर्धनपीठ का गौरव है। श्रीवैष्णव धर्म की अभिवृद्धि के लिये श्रीगोवर्धन पीठ ने जो कुछ कार्य किया है वह सर्व विदित है। देश के सभी श्रीवैष्णवाचार्य एवं विद्वान् श्रीवैष्णव सिद्धान्त के प्रचार के लिये तत्पर हों ऐसी भगवान् श्रीरङ्गनाथ से कामना है।

श्रीवैष्णव सिद्धान्त के प्रचार में विहार का योग कम नहीं है। अपने धन-जन से इस प्रदेश ने सदा श्रीवैष्णव मत का समादर किया है। आज भी यह भूमि श्रीवैष्णव समृद्धि का प्रत्यक्ष परिचय देती है। विहार के इस महत्वपूर्ण स्थल पर हमारी अखिल भारतीय संस्था का महाधिवेशन एक विशेष महत्त्व रखता है। समस्त उपस्थित महानुभावों से हमारा यही निवेदन है कि अपने सर्व विध सहयोग से श्रीवैष्णव सम्मेलन के कार्य को सफल करें।

संगठन की इस युग में महती आवश्यकता है। 'संघे शक्तिः कलौ युगे' के अनुसार यह युग धर्म है। आज देखा जाता है कि जो समाज संगठित हैं वे प्रगति के पथ पर हैं। इस सब श्रीवैष्णव भी संगठित होकर अग्रसर हों। भगवान् के समक्ष जो हमारी प्रार्थना चलती है, उसके अन्तर्गत प्रतिदिन कहा जाता है—

सर्वदेश दशा कालेषु अव्याहत पराक्रमा।
रामानुजार्य दिव्याज्ञा वर्धताम् अभिवर्धताम्॥

भगवान् श्रीरामानुजाचार्य की दिव्याज्ञा सभी देशों सभी कालों तथा सभी अवस्थाओं के लिये है। अतः हम सब इस सिद्धान्त का पुष्टि और प्रसारित करें और अपने पूर्वाचार्यों के द्वारा जो उत्तरदायित्व हम सब लोगों को प्राप्त हुआ है उसका निर्वाह करें।

हमारा सिद्धान्त महान् है। वेद-शास्त्र, इतिहास-पुराण, पाञ्चरात्र आगम, सभी एक मत से इसका समर्थन करते हैं। श्रीमद्भागवत की वाणी—

"कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण परायणाः।" कहकर हमारे आल्वार सन्तों एवं पूर्वाचार्यों का उल्लेख करती है। उनकी दिव्य वाणी के रूप में उभय वेदान्त का जो रस हमारे सम्प्रदाय को प्राप्त हुआ है वह जन-जन को भगवदनुभव प्रदान कर उनको सुखी और शान्त बनाने में समर्थ हैं। हम सब मिलकर सर्वत्र

उन रहस्यों का सन्देश पहुँचावें। अखिल भारतवर्षीय श्रीवैष्णव सम्मेलन की यह संस्था इसके लिये हमारा साधन है।

अब इस श्रीविशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की मान्यताओं का संक्षिप्त परिचय और अन्य मतों से इस सिद्धान्त की प्राधान्यता दिखाना समीचीन होगा।

छान्दोग्य उपनिषद् में एक प्रसंग आता है—उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं—'स आत्मा तत् त्वमसि श्वेतकेतो'!—श्वेतकेतु! वह आत्मा तुम्हीं हो। इस वाक्य के बाह्यार्थ की दृष्टि से जीव और परमात्मा में अभेद दीखता है। उपनिषदों के जीव-ब्रह्म निरूपण का विश्लेषण करने से दोनों भेद स्पष्ट हो जाता है—'क्षरं प्रधानं अमृताक्षरं हरः, क्षरात्मानावीशते देव एकः, पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशौ, नित्यो नित्यानां चेतनः चेतनानाम्, द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' इत्यादि। केवल भेदाभेद प्रतिपादक श्रुति ही नहीं हैं किन्तु इस प्रपञ्च को ब्रह्म का शरीर बतलाने वाली श्रुतियाँ मिलती हैं—'यस्य आत्मा शरीरं, यस्य पृथिवी शरीरम्; य आत्मनि तिष्ठन्' इत्यादि। किन्तु 'तत् त्वमसि' और उक्त श्रुतियों में विरोध प्रतीत होता है। इस प्रतीत होने वाले

विरोध के सम्बन्ध में दार्शनिक विद्वानों में पर्याप्त उहापोह रहा है।

ऐतिहासिक दृष्टि से उक्त श्रुति के प्रथम व्याख्याता श्री-शंकराचार्य हैं। चाहे उनसे पहले इस पर स्फुट रूप से बिचार किया गया हो, पर इसे एक निश्चित सिद्धान्त के रूप में लाकर इसके आधार पर अद्वैतवाद नामक दार्शनिक पद्धति के प्रतिष्ठा-पक उक्त आचार्य ही हैं। अद्वैत सिद्धान्त के सार का प्रतिपादक श्लोक—

ब्रह्मैकं परमार्थसत्तदितरन्मायामयत्वान्मृषा,
ब्रह्मैवैकमुपाधिबिम्बितमतो जीवेशभावं गतम्।
भ्रान्तिस्संसृतिरस्य तत्प्रशमनं मुक्तिः तदप्यात्मनो,
ब्रह्मैक्यावगमाच्छ्रुति श्रवणजादित्याहुरद्वैतिनः।

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म एक ही सत्य है। वह ब्रह्म निर्गुण है। ब्रह्म के अतिरिक्त वस्तुयें माया कार्य होने के कारण असत्य हैं। माया में प्रतिच्छादित ब्रह्म ईश्वर संज्ञक हो जाता है और कारणरूपा माया के कार्य रुप अन्तःकरण में प्रति-बिम्बित ब्रह्म जीव कहलाता है। ब्रह्म की उपाधिरूपा माया सत्व-गुण सम्पन्नता के कारण ईश्वर भी सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व आदि अलौकिक गुणों का आश्रय रहता है। परब्रह्म उपाधि-रूप अन्तःकरण में उक्त सत्व गुण का अभाव माना गया है। इस कारण जीव भी अलौकिक गुणों से रहित रहता है और अल्प-

अल्पशक्तिमत्व आदि से युक्त हो जाता है। इसी ब्रह्म और उसकी उपाधि प्रकरण को लेकर उपनिषदों में सत्वादि गुणों का आश्रय केवल ईश्वर को मानते हैं और ब्रह्म को निर्गुण— 'स एष नेति नेति' 'निर्गुणं निष्क्रयं' इत्यादि। इससे यह सिद्ध होता है कि चिन्मय ब्रह्म ही सत्य है। और सब मिथ्या है। 'नेह नानास्ति किंचन' जैसे वाक्यों से भी जगत् का मिथ्यात्व माना गया है। जीव की तीन अवस्थायें हैं—जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति। जागृतावस्था में प्रत्यक्षानुभवित घट, पटादि स्वप्नावस्था में विलुप्त हो जाते हैं और स्वप्नावस्था में दृष्ट वस्तुयें सुषुप्त्यवस्था में नष्ट हो जाती हैं। बाह्य और स्वाप्न प्रपंच इस प्रकार असत्य हैं। सुषुप्ति अवस्था में केवल अज्ञान रहता है। इस अवस्था में अहम् इति अन्तःकरण नष्ट हो जाता है। यह अज्ञान योगावस्था में नष्ट हो जाता है। तत्पश्चात् केवल चैतन्य ही अवशिष्ट रह जाता है। अतएव चैतन्य ब्रह्म ही सत्य है। प्रपञ्च असत्य है। छान्दोग्य उपनिषद् कथित 'तत् त्वम्' पदों की व्याख्या—विवेचना के लिये बृहदारण्यक का उपोद्घात हुआ और उसमें ईश्वर और जीव के प्रतिपादित गुणों को कल्पित कहा गया। और चैतन्य स्वरूप ब्रह्म को एक ही घोषित किया गया। 'तत्' और 'त्वम्' पद शुद्ध चैतन्य का ही कथन करते हैं। पर 'तत्' और 'त्वम्' का शुद्ध चैतन्य अर्थ कहना लक्षण-दोष से युक्त हो जाता है। 'त्वम्' पद श्वेतकेतु के लिये ही

प्रयुक्त हुआ है, शुद्ध चैतन्य के लिये नहीं है। लक्षणार्थ के द्वारा उसका शुद्ध चैतन्य ब्रह्म अर्थ कहना अनुचित है। लक्षणार्थ का आरोप अभिधार्थ को बाधित होने पर ही होना चाहिये। इस दोष को अद्वैतवादी स्वीकार कर लेते हैं। अद्वैतवादी अभेद-श्रुत्ति को ही मुख्य मानते हुये अन्य वाक्यों को गौण या लाक्षणिक कह कर अद्वैत को ही वेद का तात्पर्य बताते हैं।

जीवात्मा का, मैं ज्ञानी हूँ, मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, इत्यादि भ्रम ही अद्वैतवादियों के मत में संसार है। भ्रम निवृत्ति ही मोक्ष है। 'तत् त्वमसि' इत्यादि उपनिषद् वाक्यों के द्वारा उत्पन्न ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से ही भ्रमनिवृत्ति होती है। यही अद्वैतवादियों का सिद्धान्तसार है।

इस मत के अन्य दोष दार्शनिक हैं। प्रथम यह दोष है कि प्रत्यक्ष सिद्ध प्रपंच को यह सिद्धान्त मिथ्या मान कर चलता है। दूसरा दोष यह है कि कुछ उपनिषदों द्वारा कथित जीवेश्वर भेद को यह सिद्धान्त अमान्य ठहराता है और उनको गौण या लाक्षणिक कहकर अद्वैत को ही वेद का तात्पर्य बताता हैं। 'क्षरं प्रधानं अमृताक्षरं हरः इत्यादि'

उक्त शांकर अद्वैत की ऐतिहासिक उपयोगिता तो इस बात से सिद्ध है कि बौद्ध-अभिचार से लुप्तप्राय श्रुति-पथ पुनः स्थापित हो गया, पर, व्यावहारिक तथा दार्शनिक दृष्टि से इसके ऊपर कथित दोष स्पष्ट ही रहे। इस मत की प्रति क्रिया में चार

आचार्यों ने अपनी दार्शनिक पद्धतियाँ दीं। श्री मध्वाचार्य ने द्वैतवाद श्री रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद, श्री निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत या अचिन्त्य भेदा-भेद श्री वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत के द्वारा शांकर अद्वैत का संशोधन किया, यहाँ सभी मतों का विवेचन अप्रासंगिक है। केवल श्री मध्वाचार्य प्रवर्तित द्वैतवाद, तथा श्री रामानुजाचार्य प्रवर्तित विशिष्टाद्वैतवाद का विहंगावलोकन प्रासंगिक होगा।

श्री मध्वाचार्य का द्वैतवाद

श्री मध्वाचार्य के सिद्धान्तसार प्रतिपादक श्लोक—

श्री मन्मध्वते हरिः परतरः सत्यं जगत्तत्वतो
भिन्ना जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः।
मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं
ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नयैकवेद्यो हरिः ॥

इस सिद्धान्त का सार यह है-द्वैत मत में श्रीविष्णु भगवान् परतर हैं। जगत सत्य है, मिथ्या नहीं है। जीव एक दूसरे से भिन्न हैं। एक ही जीव नहीं है और जीव ब्रह्म से भी अलग हैं। जीव हरि के सेवक हैं और अपने कर्मों के अनुसार यह लोक में और परलोक में नीचोच्च भाव को प्राप्त हैं। इनके सिद्धान्त में मोक्ष स्वरूपानन्दानुभव ही है। भगवान्विष्णु के पास जाने को निर्म

भक्ति ही उसके लिये साधन है। पदार्थ ग्रहण में साधनीभूत प्रमाण इनके सिद्धान्त में तीन हैं—(१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) आगम यही मध्व सिद्धान्त का सार है।

उक्त आचार्य भेद-अभेद के विरोध का समाहार दो प्रकार से करते हैं। पहले उपनिषद् वाक्य **'आत्मा तत् त्वमसि'** का अन्वय इस प्रकार किया-**'आत्मा अतत् त्वमसि'** और इस प्रकार अर्थ में संशोधन करके यह मत रखा-अधोनिरूपित आत्मा तुम नहीं हो तुम और परमात्मा तत्वतः अलग-अलग हैं। इस प्रकार दार्शनिक विरोध समाप्त हो जाता है।

यदि उक्त वाक्य में अभेद माना ही जाय तो वह अभेदत्व तात्विक न हो कर मात्र औपचारिक है। यदि किसी राजा की अधिकृत वस्तुओं की ओर संकेत करके कहा जाय कि **'यहाँ राजा है'** तो इस कथन से अधिकारी और अधिकृत में चाहे औपचारिक दृष्टि से अभेद माना जाय, तत्वतः उन में भेद ही है। इसी प्रकार उक्त वाक्यान्तर्गत अभेद औपचारिक है। तात्विक दृष्टि से उनमें निश्चय ही भेद है। जीव और ब्रह्म के इसी तात्विक भेद की सिद्धि के कारण इस मत को द्वैत मत कहते हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्त भी जीव और परमात्मा के निरूपण की दृष्टि से पूर्णतः निर्दोष नहीं है। श्रुति वाक्य **'आत्मा तत् त्वमसि'** का पद विच्छेद करना दुरान्वय या दोषपूर्ण ही प्रतीत होता है।

अभेद श्रुति के निराकरण के लिये औपचारिक अभेद का आविष्कार भी युक्ति-युक्त नहीं है। अतएव शांकर मत के स्थान पर एक सर्वथा निर्दोष सिद्धान्त की आवश्यकता बनी रही।

श्रीरामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद

श्रीमल्लक्ष्मणयोगिनस्तु भुवनं सत्यं तदीशः श्रियः
कान्तो ब्रह्म स एव सोऽखिलतनुः भिन्नास्ततश्चेतनाः।
सत्या संसृतिरीशनिग्रहकृता मुक्तिस्तु भक्त्यादिना
तत्प्राप्तः परमे पदे तदनुभूत्याख्येति संचक्षते॥

श्रीविशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में प्रपञ्च सत्य है। कार्यकाल में उपयोग होने के कारण इस संसार के अधिपति श्रीमन्नारायण हैं। श्रीमन्नारायण ही सकल कल्याण गुणों का अधिष्ठाता हेय गुणों का अनधिष्ठाता ब्रह्म हैं। भृगुवल्ली में 'जो जगत्कारण है वही ब्रह्म है' कहा गया है—**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ..... तद्ब्रह्मेति**। नारायणोपनिषद् में श्रीमन्नारायण ही जगत्कारण है कहा गया है—**यतः प्रसूताः, यस्मिन् इदं सञ्चविचैतिसर्वं; येनावृतं सर्वंनिमेषाः, ह्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ तेन इदं पूर्णं पुरुषेण सर्वं; इत्यादिना** इससे यह सिद्ध होता है कि श्री मन्नारायण ही ब्रह्म है। चेतन अचेतन वस्तु श्रीमन्नारायण के शरीर हैं। यह जीवात्मा ब्रह्म से भिन्न है। इस जीव

को कर्मवश उत्पन्न प्रकृति सम्बन्ध ही संसार है। यह सम्बन्ध ईश्वर के विग्रह से उत्पन्न होने के कारण सत्य है। मोक्ष के लिये भक्ति ही साधन है। ईश्वर के प्रति चेतन जो भक्ति या प्रपत्ति करता है उनमें एक के द्वारा परमपद को प्राप्त कर उस लोक में ब्रह्म का अनुभव करना ही इस सिद्धान्त में मोक्ष है।

'तत् त्वमसि' वाक्यांश का अर्थ विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार किया जाता है। यह प्रत्यक्ष जगत् मिथ्या नहीं, सत्य है। अद्वैतवादियों का यह तर्क कि जगत् स्वप्नावस्था में नहीं दीखता, इसलिये असत्य है, निर्मूल निराधार है। स्वप्नावस्था में इन्द्रियजगत सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। फलतः उसका ऐन्द्रिक प्रत्यक्ष अनुभव सम्भव नहीं रहता। इसके आधार पर जगत् को असत्य कहना असंगत है। किसी वस्तु का अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता—**नह्येषः स्थाणोरपराधः यदेनं अन्धो न पश्यति**'। केवल उस वस्तु के साथ ऐन्द्रिय सम्बन्ध नहीं है यही कहा जा सकता है। प्रत्यक्ष 'कार्य' का हेतु जगत-इन्द्रिय सम्बन्ध है। इसके अभाव से जीव की तीनो अवस्थाओं में से दो अवस्थाओं—स्वप्न और सुषुप्ति में जगत् के प्रत्यक्ष न होने से जगत का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं हो सकता।

जगत् की सृष्टि, स्थिति और उसका संहार करने वाला ब्रह्म है। उपनिषद् ब्रह्म को अनेक गुणों का अधिष्ठाता कहता है—**सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म, सर्वस्य वशी; सर्वस्य ईशानः**

इत्यादि। दूसरी ओर वही उपनिषद् शुद्ध चैतन्य ब्रह्म एक ही है और वह निर्गुण है, यह भी कहता है— **एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म. नेह नानास्ति किंचन, निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं** इत्यादि परस्पर विरोधी कथन विक्षिप्त—प्रलाप जैसे प्रतीत होते हैं। दूसरी बात यह है कि नितान्त अज्ञात गुणों का अधिष्ठाता ब्रह्म को बताकर पीछे निर्गुण कह दिया गया है। ऐसा शास्त्र नहीं कह सकता जो **'मातापितृशतेभ्योऽपि वत्सल तर'** है। इस दृष्टि से श्रुति वाक्यों में विरोध की कल्पना अपना ही मति भ्रम है। वस्तुतः उनमें कोई मौलिक विरोध नहीं है। विशिष्टाद्वैतवादी दृष्टि से देखने पर यह प्रतीयमान विरोध स्वयमेव समाप्त हो जाता है। ऊपर जिन सत्वादि गुणों का ब्रह्म को अधिष्ठाता कहा गया है, उनके कारण वह सगुण है और **निर्गुणं निष्क्रियं'** श्रुति के द्वारा उसे निर्गुण कहने के तात्पर्य से **'गुणत्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताक अभावः'** नहीं है। अपितु पाप जरा मृत्यु शोक आदि हेय गुणों से रहित रहने के कारण **'तदवच्छिन्नप्रतियोगि-ताकअभाववान्'** कहा गया है—**अपहतपाप्मा विजरःविमृत्यः** इत्यादि। यही निर्गुण का तात्पर्य है। किसी स्थान पर नील घट दिखा कर, यह कहा जाय 'घट नहीं है' तो तात्पर्य यह होगा **नीलातिरिक्त घट** का अभाव है। इस प्रकार की व्याख्या से श्रुति-गत विरोध समाप्त हो जाता है। अगुण सगुण की एकता की बात श्रीगोस्वामी तुलसीदास ने भी स्वीकार की है।

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कुछ भेदा।
गावहिं श्रुति पुरान बुध वेदा॥
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे।
जल हिम उपल विलग नहिं जैसे॥

आगे श्रुति कहती है कि संसार के दुखों में जकड़ा हुआ जीव ब्रह्म की उपासना करके मोक्ष को प्राप्त करता है—**समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः अनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशं अस्य महिमानम् इति वीतशोकः।** इससे प्राप्य प्रापक न्याय द्वारा जीव और ब्रह्म का भेद सिद्ध होता है। इस दृष्टि से अद्वैतवादियों का ब्रह्म और जीव का तथाकथित ऐक्य असिद्ध हो जाता है। यदि एक ही हैं तो जीव, ब्रह्म की उपासना कैसे करता है।

गुणों के आधार पर भी इन दोनों में भेद है ब्रह्म के गुण जीव के गुण से पृथक् हैं। ब्रह्म सर्वव्यापी, सर्वज्ञता आदि गुणों का आश्रय है—**'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशौ, यः सर्वज्ञः; अन्तर्बहिश्चतत्सर्वं व्याप्यनारायणःस्थितः'** इत्यादि। तथा जीव ससीम, अल्पज्ञ, अल्पशक्ति और माया से प्रेरित सांसारिक दुखों का भोक्ता है—**'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशौ'**।

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' इत्यादि। इन दोनों में अभेद कहना सूर्य और खद्योत में अभेद के समान हास्यास्पद है।

इस सम्बन्ध में उपनिषदों का सृष्टि प्रकरण द्रष्टव्य है। वहाँ सृष्टि का विकास क्रम यों रखा गया है। पहले ब्रह्म एक था। उसमें संकल्प का उदय हुआ- **एकोहं बहुस्यांम्** और ब्रह्म ने अपने को अनेक रूपों में सृजित किया—**बहुस्यां प्रजायेयेति; इदं सर्वं असृजत** (तैतिरीय उपनिषद)। इस प्रकार एक ही ब्रह्म अनेक रूपों में प्रतिभासित होता है। जैसे एक सूर्य-बिम्ब अनेक जलघटों में प्रतिबिंबित होता है। मनु के अनुसार भी ब्रह्म ने अपने शरीर से विविध प्रजा का सृजन किया—

सोभिध्याय 'शरीरात् स्वात् सिसृक्षुः विविधाः प्रजाः। अप एव ससर्जादौ तासु बीर्यमपासृजत्। और उपनिषद् में भी जगत् को ब्रह्म का शरीर बताया गया है—यस्यात्मा शरीरं यस्य पृथिवी शरीरम् य आत्मनि तिष्ठन्। अपने शरीर से ही ब्रह्म ने जलादि की सृष्टि की इससे यह सिद्ध होता है कि यह प्रपञ्च ब्रह्म का शरीर है।

जगत् और जीव परिवर्तन के नियम से परिचालित हैं। परिवर्तन रूपों का आश्रय ब्रह्म जगत् और जीव कारण हो जाता है किन्तु स्वतः सिद्ध कोई परिवर्तित रूप ब्रह्म में नहीं है। विशेषणप्रयुक्त विशिष्ट में भी परिवर्तनरूपों का समागम होता है। सूक्ष्माचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही कारण है। स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही कार्य है। कारण कार्य क्रम को पूर्णता ब्रह्म में है। नामरूपात्मक अवस्थाओं से विरक्त (सूक्ष्मावस्था प्रलयकाल में) चित् और अचित् विशिष्ट ब्रह्म ही कारण है। नामरूपअवस्थाओं से विशिष्ट (स्थूलावस्था) चित् और अचित् विशिष्ट ब्रह्म का कार्य है। इससे यह सिद्ध होता है कि जीव ब्रह्म से अलग है ब्रह्म का शरीर रूप प्रपञ्च सत्य है, मिथ्या नहीं। प्रलयावस्था में जगत् और जीव अपनी नाम रूप सहित अवस्था को प्राप्त करते हैं। उक्त सृष्टिप्रकरण में कथित उपनिषद् और स्मृति वाक्यों का संक्षेप में यही अर्थ है। उद्दालक ने अपने पुत्र को यही उपदेश दिया है कि सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म (तत्) स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म (त्वम्) के रूप में हैं।

यहाँ एक शंका उपस्थित हो सकती है, लोक व्यवहार में त्वम् पद शरीरविशिष्टचेतन का ही अर्थ देता है, फिर स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्मार्थक यह नहीं हो सकता। जिस प्रकार सामान्य मनुष्य त्वम् को मात्र शरीरार्थक मानता है, और

विशिष्टज्ञान युक्त विद्वान् उसको शरीर विशिष्ट चेतनार्थक कहता है, उसी प्रकार सर्वज्ञ वेदपुरुष **त्वम्** से स्थूल चिदचिद्विशिष्ट अर्थ ही घोषित करता है। इससे जगत् रूप शरीर से विशिष्ट ब्रह्मरूप शरीर ही **त्वम्** के द्वारा सूचित माना जाना चाहिये। दूसरी शंका **असि** के प्रयोग से उत्पन्न होती है। **त्वम्** ब्रह्मवाचक है तो अन्यपुरुष का **अस्ति** प्रयुक्त होना चाहिये। किन्तु यहाँ मध्यमपुरुष **असि** का प्रयोग विचारणीय है! इसके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि **युष्मद्** शब्द के साथ व्याकरण के अनुसार धातु का मध्यमपुरुष प्रयुक्त होना ही चाहिये। इसलिये **असि** का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः **त्वम्** के विशेषार्थ को ध्यान में न रख कर **असि** का प्रयोग किया गया है।

'क्षरं प्रधानम् अमृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशौ, नित्यो नित्यानां चेतनः चेतनानाम् इत्यादि भेद श्रुतियाँ जीवात्म भेद को कहती हैं। **नेह नानास्ति किंचन सदेव सोम्येदमग्र आसीत; सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तत् त्वमसि'** इत्यादि अभेद श्रुतियाँ सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म और स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म में अभेद कहती हैं। अतः भेद-अभेद श्रुतियों में कोई विरोध प्रस्तुत नहीं होता है। कारणावस्था विशिष्ट ब्रह्म और कार्यावस्थाविशिष्ट ब्रह्म में वस्तुतः अभेद है। यही **'तत् त्वमसि'** का अर्थ है। इसी से इस सिद्धान्त का नाम विशिष्टा द्वैत पड़ा इसमें ब्रह्मैक्य प्रतिपादित है। इसी के प्रकाश में भेदार्थ प्रतिपादक, अभेदार्थ प्रतिपादक तथा शरीर-शरीरी संबन्ध सूचक

श्रुतियाँ प्रमाणित हो जाती हैं अद्वैतवादि तथा द्वैतवादियों की तरह भेदार्थक और अभेदार्थक श्रुतियों के प्रामाण्य पर शंका नहीं रह जाती। इस दृष्टि से उक्त सभी सिद्धान्तों से विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त श्रेष्ठतम है।

अस्तु-अनादि अपौरुषेय वेद प्रतिपाद्य परम वैदिक श्री सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत दर्शन का प्रकाश और प्रचार सर्वथा लोकोपकारक है, किन्तु इसके लिये अत्यावश्यक है कि प्रत्येक विशिष्ट स्थानों में श्री रामानुज दर्शन श्री भाष्य आदि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों के अध्ययन और अध्यापन की व्यवस्था की जाय। किसी धर्म या समाज की भित्ति उसके दर्शन के विद्वानों पर ही स्थिर रह सकती है।

दक्षिण और उत्तर देश में सर्वत्र मठ, मन्दिर स्थान आश्रमों की स्थापना ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ (विरक्त) तथा सन्यास की पद्धति पूर्वाचार्यों द्वारा इसी उद्देश्य से प्रचलित की गई थी कि इन के द्वारा विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का ज्ञान और श्रीवैष्णव सिद्धान्त का विकाश तथा भक्ति प्रपत्ति के प्रचार द्वारा लोक कल्याण का श्रोत अविच्छिन्न रूप से चलता रहे किन्तु युग के प्रभाव से संस्कृत शास्त्रों के शिक्षा के अभाव से अनुष्ठान में शिथिलता आ जाने के कारण आज श्री वैष्णव समाज में भी बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता प्रतीत हो रही है।

इस समय सम्पूर्ण देश का वायुमण्डल ही विकृत हो रहा है। इस समय श्रीवैष्णव साधु महात्मा तथा विद्वानों का मुख्य कर्तव्य है कि वह भ्रान्त जनता को उद्बुद्ध करने के लिए स्वयम् जागरुक हो जायँ। शताब्दियों से चली आयी हमारी मठ मंदिरों की परम्पराओं पर अब प्रत्यक्ष रूप से प्रहार होने जा रहा है। नए-नए नियम नए-नए कर तथा नए नए सुझाव राज्य सरकारों

की ओर से उपस्थित किए जा रहे हैं जिनका अनुभव प्रायः आप सब कर रहे हैं। इस लिए बड़ी सावधानी के साथ इन विषयों पर गम्भीरता के साथ विचार करना होगा और अपना मन्तव्य लोक हित की दृष्टि से जनता और सरकार दोनों तक पहुँचाना होगा।

अन्त मे हम सभी मठाधीश महन्त सन्त महात्माओं और सद् गृहस्थों एवं विद्वानों का ध्यान उस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं कि हम सब—

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः।
बान्धवा विष्णु भक्ताश्चस्वदेशो भुवनत्रयम्॥

का अनुसन्धान करें और समापतित अवान्तर भेदभाव दोषों को दूर कर अपनी प्राचीन प्रेममयी विश्व बन्धुत्व भावना का आदर्श स्थापित करें। साथ ही अपने मठ स्थान मन्दिर विद्यालय आदि धार्मिक संस्थाओं का यथाविधि संरक्षण संवर्धन तथा सञ्चालन करने पर पूर्ण ध्यान देवें।

इसी प्रकार उपर्युक्त कर्तव्यों की पूर्ति विधायक अखिल भारतीय श्री वैष्णवों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था श्रीवैष्णव सम्मेलन जिसका संस्थापन श्री तीर्थराज प्रयाग मे अक्षय बट की छत्र छाया मे श्रीमज्जगद्गुरु प्रतिवादि भयङ्कर श्री १००८श्रीस्वामी अनन्त चार्य जी के द्वारा आज से ५० वर्ष पूर्व हुआ है उसमे अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर श्री सम्प्रदाय की अभिवृद्धि में सहायक होवें।

रामानुजार्य दिव्याज्ञा प्रतिवासरमुज्ज्वला।
दिगन्त व्यापिनी भूयात् साहि लोक हितैषिणी। श्री रस्तु

फा० शु० ५ सं० २०१७ गो० रङ्गाचार्य

श्रीवैष्णव प्रेस, दारागंज, प्रयाग ।